ॐ

ब्रह्मचर्य का विघ्न
और
ग्राहकोंका कर्तव्य ।

(१) ब्रह्मचर्य से लाभ ।

ब्रह्मचर्य पालन होनेसे अनेक लाभ होते हैं, इस विषयमें किसीको संदेह नहीं हो सकता । वेदसे लेकर इस समयतकके संपूर्ण धार्मिक-ग्रंथोंमें ब्रह्मचर्यकी महिमा वर्णन की है, सब सुविचारी धार्मिक सज्जन ब्रह्मचर्य पालन करनेके विषयमें सर्वदा ही उत्तम उपदेश देते आये है । आर्य वैद्यकके ग्रंथ एकमतसे कहते हैं कि ब्रह्मचर्य पालन करनेसे आयु, आरोग्य, बल, उत्साह, कांति आदिकी वृद्धि होती है । इतिहास साक्षी देता है कि, जिन लोगोंने अखंड ब्रह्मचर्य का उत्तम पालन किया, वे पराक्रमी दीर्घायुषी और वंदनीय पुरुष बन गये हैं । योगके पुस्तक बता रहे हैं कि, ब्रह्मचर्यके विना योगसाध्य श्रेष्ठ अवस्थाका अनुभव नहीं हो सकता है । ब्रह्मचर्याश्रममें ब्रह्मचर्यका पालन ठीक हुआ तोही गृहस्थाश्रम का उत्तम सुख प्राप्त होता है, तथा वानप्रस्थ और संन्यासमें उत्तम ब्रह्मचर्य पालन होने-सेही कार्य ठीक होना संभव है । चारों वर्णोंके तथा चारों आश्रमोंके कर्तव्य उत्तम पालन होने के लिये ब्रह्मचर्यके उत्तम पालन होनेकी

अत्यंत आवश्यकता है । तथा वैयक्तिक, सामुदायिक, जातीय, राष्ट्रीय, धार्मिक, तथा अन्य कर्तव्य, जो मनुष्यको करने आवश्यक होते हैं, वे मनुष्यसे ठीक होनेके लिये ब्रह्मचर्य पालन की अत्यंत आवश्यकता है । तात्पर्य मनुष्यकी उन्नतिका ब्रह्मचर्यके साथ नित्य और अखंड संबंध है । इसलिये **कार्यकर्ता मनुष्योंको ऐसे प्रयत्न करने अत्यावश्यक है कि, जिससे दिन प्रतिदिन ब्रह्मचर्य पालन होना सुकर हो जाय।** नेताओंके प्रयत्नभी ऐसे होने चाहिये कि जिससे पूर्व शताब्दीकी अपेक्षा इस शताब्दीमें ब्रह्मचर्यका पालन अधिक प्रमाणमें होना संभव और सुकर होवे ।

(२) मानवी हलचलका उद्देश्य ।

हरएक मानवी हलचलका उद्देश्य यही होना चाहिये कि, कलकी अपेक्षा आज और आजकी अपेक्षा आगामी दिन मनुष्यका सच्चा सुख बढे । मनुष्यको आयु, आरोग्य, शांति और आनंद अधिक प्राप्त हो । कोई शिक्षित, सभ्य तथा राष्ट्रीय भावना धारण करनेवाला नेता कभी ऐसी हलचल जानबूझकर नहीं करेगा कि, जिससे अपनी जातिकी हानि और अवनति होना संभव हो । अज्ञानके कारण नेता लोगोंकी भी गलती हो सकती है, परंतु उनका दोष उनपर नहीं आसकता । इसलिये यह सिद्ध है कि, जो जो हलचल सभ्य और शिक्षित कर रहे हैं, उसका उद्देश्य मानवी उन्नति ही है । वेदभी कहता है कि—

उद्यानं ते पुरुष नावयानम् ॥ अ. ८ । १ । ६

" हे मनुष्य ! (ऐसा प्रयत्न कर कि जिससे) तेरी उन्नति हो और अवनति न हो । " सब मनुष्योंकी इच्छा भी यही है । परंतु हम देखते हैं कि, यद्यपि हलचल करनेवालोंकी इच्छा अत्यंत उत्तम है, प्रयत्न और हलचल भी बडे यत्नसे करनेका उत्साह दिखाई देता है । जोरकी हलचल भी हो रही है, तथापि फल जैसा चाहिये वैसा मिलता नहीं है । इससे स्पष्ट होता है कि, केवल इच्छासे और केवल हलचल करनेसेही कार्यभाग होना संभव नहीं है । जो प्रयत्न करते हैं, उनमें " शुद्धता " भी चाहिये, अन्यथा सिद्धिमें विघात होगा । जो बात सर्वसाधारण उन्नतिके विषयमें सत्य है, वही " ब्रह्म-चर्य " के विषयमें भी अधिक अंशसे सत्य है; क्यों कि शुद्धता और पवित्रताके विना ब्रह्मचर्यका पालन होना अशक्य है । अन्य हलचलोंके साथ आजकल धार्मिक हलचल भी बहोत है; समाज हैं, संघ हैं, मंडल हैं, गुरुकुल, ऋषिकुल, और आचार्यकुल हैं, धार्मिक वृत्तपत्र और मासिक पत्र हैं, धार्मिक ग्रंथोंकी संख्या भी बढ रही है; परंतु इतना सब होते हुए भी ब्रह्मचर्यकी कठिनता दूर नहीं हुई, और पूर्व शताब्दीकी अपेक्षा इस शताब्दीमें आयु, आरोग्य, बल शांति और आनंद बढगया है, ऐसा कहना कठिन है । ऐसा क्यों है, प्रियपाठको, सोचनेका यत्न कीजिये ।

(३) आजकलकी शिक्षाके साधन ।

योग्य शिक्षासे उन्नति और अयोग्य अभ्यास बढनेसे अवनति होती है । **सुशिक्षासे अभ्युदय और कुशिक्षासे पराभव होता है ।** इसलिये हमारे शिक्षाके साधन कैसे हैं, इसका भी थोडासा विचार

करना आवश्यक है। प्राचीन कालमें वानप्रस्थी, संन्यासी, सूत, ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगी आदि विपुल होते थे और जनताको अपने आचरणसे शिक्षा देते थे, इसलिये— (छां. उ. ५।११।५)

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ॥

“ मेरे राष्ट्रमें चोर नही है, कृपण नही है, मद्यपी नही है, अयाजक नहीं है, अज्ञानी नही है, व्यभिचारी नहीं है, फिर व्यभिचारिणी कहांसे होगी ? ” ऐसी परिशुद्ध सामाजिक स्थिति थी। यह अवस्था चली गई, इसका कारण इतनाही है कि, वैसे सदाचारी लोग नही रहे। तात्पर्य यह है कि, धर्मकी हलचल करनेवाले स्वयं धार्मिक आचरण करनेवाले होने चाहिये, अन्यथा केवल शब्दोंद्वारा ही यदि प्रचार हुआ, तो उसका परिणाम शब्दोंतक ही रहेगा। वास्तविक रीतिसे धर्मका उपदेश मुखसे नहीं होता, वह आचरणसे होता है। जब कभी यह बात नेता लोगों के ध्यानमें आजायगी, तब सच्चे उपदेशका प्रारंभ होगा।

प्राचीन कालमें बडे बडे यज्ञ और सत्र हुआ करते थे, उनमें चारों देशोंके विद्वान संमिलित होते और धर्मका विचार किया करते थे। वे सब प्रकार अब बंद हुए हैं और नये योग्य उपाय अमलमें आये नहीं। इसलिये योग्य रीतिसे कार्य नहीं होता है इसका विचार सबकोही करना उचित है।

इस समय उपदेशक हैं, हरिकथा करनेवाले हैं, व्याख्याता और प्रवचनकार भी कोई कम नहीं हैं। परंतु उनके उपदेशोंका परिणाम

उपदेश श्रवण करनेतक ही रहता है, इसका मूल कारण ढूंढना चाहिये। प्राचीन समयमें सच्चा धर्मात्मा संन्यासी जहां होगा, वहां सहस्रों लोग जाते थे और उसके थोडेसे उपदेशसे अपने आपको पावन करलेते थे; परंतु आजकल धार्मिक संस्थाओंके वेतनिक उपदेशक मंत्रीजीकी आज्ञानुसार वैदिक धर्म प्रचारका झंडा हाथमें लेकर ग्राम ग्राममें भ्रमण कर रहे हैं, तथापि वह बात सिद्ध नहीं होती; इसका कारण क्या है ? वार्षिकोत्सव और जल्से बडी धूमधामके साथ करनेका प्रयत्न होता है, प्रभावशाली उपदेशक और जोशीले भजनीकही बुलाये जाते हैं, परंतु जलसा समाप्त होनेके पश्चात् दरिया उठानेके पूर्वही जोशीले व्याख्यानों और भजनोंका जोश कम होता है। और पूर्ववत् ही आपसके झगडे बढते जाते है और वह धार्मिक बंधुत्वका प्रेम नहीं दिखाई देता, जिसकी प्यास धार्मिक हृदयमें उत्पन्न होती है। क्या इसका कारण है, सोचिये तो सही।

(४) हलचलका नवीन साधन।

प्राचीन लोगोंके पास जो नहीं था और हमारे पास ही जो है, ऐसा एक "**जन-शिक्षाका नवीन साधन**" प्राप्त हुआ है। इस साधनसे हम अधिक लोगोंतक अपना संदेशा पहुंचा सकते हैं और यदि हुआ तो जनताका अधिक लाभ भी कर सकते है। यह साधन "**मुद्रणालय और वृत्तपत्र**" है। जिसप्रकार रेल और तार अथवा "बिनतार की तार" विदेशसे यहां आगई उसीप्रकार छपाखाना और वृत्तपत्र भी आगये। इस साधनमें निःसंदेह बडीभारी शक्ति है।

प्राचीन कालमें कोई सत्पुरुष एखाद् पुस्तक लिखता था, परंतु उसकी प्रतिलिपी करनेका कोई साधन नहीं होता था, इसलिये उसके शिष्य प्रतिलिपी किया करते थे, अथवा कई निर्धन पुरुष सद्ग्रंथोंकी प्रातिलिपी बेचकर, अपना गुजारा किया करते थे । इस पूर्वसमयमें प्रतिलिपियां अधिक होने की सदिच्छासे "ग्रंथके दान का पुण्य" भी प्रलोभन के लिये रखा जाता था । परंतु इस समय "मुद्रणालय" विद्यमान हैं, और जो मर्जीमें आता है, वह छापा जाता है !! अखबारें, मासिकपत्र और पुस्तक प्रसिद्ध होते हैं। प्राचीन कालमें एक मनुष्य अपने उपदेशसे अधिकसे अधिक दस हजार मनुष्यों को अपना संदेशा सुना सकता था । परंतु इस समय अखबार के द्वारा लाखों मनुष्योंतक संदेशा सुनाया जा सकता है । कितनी विलक्षण बडी शक्ति हमारे हाथमें इस समय है, इसका पाठक विचार करें । परंतु इतिहास का अवलोकन करनेसे पता लगता है कि, जिस समय यह शक्तिशाली साधन नहीं था, उस समय जो धर्मभाव जनतामें था, वह इतना साधन उपलब्ध होनेके पश्चात् भी बढा नहीं, परंतु घट गया है, यह कितना आश्चर्य है ?

(५) वृत्तपत्रोंकी शक्ति ।

विचार करनेपर विदित हो सकता है कि, साप्ताहिक, दैनिक अथवा मासिक पत्रोंकी बडीभारी शक्ति है । इस शक्ति का किसी अन्य शक्तिसे मुकाबलाही नहीं हो सकता । बडे सम्राटोंकी शक्ति निःसंदेह बडी विशाल होती है, परंतु उनके सिंहासन हिलाने और उनके

मुकुट पिघलानेकी शक्ति इन वृत्तपत्रकारोंकी लेखनीमें होती है। राष्ट्रोंके अंदर जो परिवर्तन शताब्दीयोंतक होना भी असंभव था, वह परिवर्तन दशाब्दीयों में हो रहा है और जिसप्रकार छोटा बालक अपने खिलौने उठाकर फेंक देता है, उसप्रकार ये वृत्तपत्रों और मासिकोंके संपादक बडे बडे सम्राटोंको उखाडकर फेंक देते हैं, और इष्ट शासन की प्राणप्रतिष्ठा कर रहे हैं। पाठको, विचार कीजिये कि, यह शक्ति कितनी बडी है। पत्रकारोंकी जो यह शक्ति राजकीय शतरंजपर दिखाई देती है, क्या वह, इच्छा होनेपर धार्मिक भूमिमें कार्य नहीं कर सकेगी ? मेरा विश्वास है कि अवश्य कार्य कर सकती है, परंतु संपादक और प्रबंधक के मनमें इच्छा चाहिये। परंतु शोकसे कहना पडता है कि, इतनी शक्ति जिनके आधीन है, उनके मनमें धर्मभाव, सच्चा धर्मभाव, फैलानेकी इच्छा नहीं है।

(६) वृत्तपत्रोंका अंतरंग।

पाठक हमें क्षमा करें और जो लिखा जाता है, वह ठीक है या नहीं है, इसका विचार करें। वृत्तपत्रोंके संपादक और प्रबंधकर्ता जो इस समय व्यवहार कर रहे हैं, उनमें कोई दोचार ऐसे होंगे कि, जो हमारे कहनेमें अपवादक माने जा सकते हैं; परंतु शेष सबके सब प्रायः अपने कर्तव्यसे विमुख ही हैं, और अपने हाथमें कितनी प्रचंड शक्ति है, तथा उसका उपयोग अच्छे कार्यमें किया जाता है वा नहीं, इसका वे विचार भी नहीं करते।

पार्टिया और धडेबंदी बढाने, अपने मतका आग्रह फैलाने, जनताके अज्ञानका अधिकसे अधिक फायदा उठाने, एक ढोंग छोडा तो दूसरे ढोंग को अन्य रीतिसे खडा करने, असत्यको सत्यका रूप देने, ईर्षाद्वेषके विचार फैलाकर अपने ग्राहक बढाने, चमकिले शीर्षक लिखकर ग्राहकोंका चित्त आकर्षित करने में आजकलके संपादक दत्त-चित्त हो रहे हैं। क्या इसमें अत्युक्ति है ? सत्यकी निष्ठा बढाने के स्थानपर पार्टीबाजीकी धडेबंदी बढाई जा रही है। ऐसी अवस्थामें " धर्म " के लिये स्थान कहां है ? धडेबंदीमें स्वपक्षकी सत्यता और परपक्षकी असत्यता ही दिखाई जाती है, परंतु सचाई इससे दूर ही होती है। सचाई के विना धर्मका आधार कहां है ? राजकीय दलके अथवा सामाजिक दलके अखबार देखिये, तथा धार्मिक कार्य के भी पत्र देखिये; सबमें यही भाव प्रमुख है कि, अपने पक्षका समर्थन करना, फिर अपने पक्षमें सचाई हो या न हो।

परंतु यह बात सामान्य नीतिकी हुई। हमें इस लेखमें साधारणतः धार्मिक भाव और विशेषतः ब्रह्मचर्यका भाव सुरक्षित होता है वा नहीं इसका ही विचार करना है। इसलिये अन्य विवादास्पद बातोंको छोडकर इसका ही विचार करेंगे।

सब पत्रोंका मुख्य उद्देश अच्छा है, परंतु पार्टीबाजी होनेके कारण तथा अपने दलके अनुकूल ही लेख लिखनेकी आवश्यकता होती है इसलिये, सबका धर्म रक्षणका उद्देश होनेपरभी, ऐसी अवस्था आ पहुंची है कि, न केवल राजकीय पत्रोंमें परंतु धार्मिक पत्रोंमेंभी, सच्चे

मानव धर्मके विचार शुद्ध निःपक्षपातसे करना प्रायः असंभव हुआ है। तथापि धर्मकी आवश्यकता और ब्रह्मचर्यका रक्षण करनेके विषयमें प्रायः सब पक्षके पत्रकार एक मतसे अनुकूल मत देंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। अन्य पत्र छोड दिये जांय और केवल धार्मिक पत्रोंका ही विचार किया जाय, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि ब्रह्मचर्य के विरुद्ध लेख लिखनेवाला किसीभी धार्मिक पत्र का संपादक नहीं होगा। कमसे कम यह बात अत्यंत आनंदकी है कि, धार्मिक पत्रोंके लेखक ब्रह्मचर्यके विषयमें एक मतसे अनुकूल हैं। अपने आचरणसे ब्रह्मचर्य पालन हो या नहो, कमसे कम लेखोंसे जनताका चित्त ब्रह्मचर्यकी और आकर्षित करनेका प्रशंसनीय कार्य ये संपादक कर रहे हैं, इसलिये इनका धन्यवाद करना आवश्यक है। इसीप्रकार धार्मिक उपदेशक भी अपने उपदेशद्वारा ब्रह्मचर्यका महत्व लोगोंको बता रहे हैं। यह सब ठीक है, परंतु इन पत्रकारोंकी जिम्मेवारी यहांही समाप्त नहीं होती, इसका कारण हम आगे बतायेंगे।

यह अपना " **आर्यदेश** " अनादिकालसे धर्मविचार केलिये सुप्रसिद्ध है। अनादि कालसे श्रेष्ठ ऋषिमुनि इस देशमें धर्म विचार करते आये हैं, और इस समयतक साधु संत महात्मा आदि धर्म की जागृति करते रहे हैं। ऐसे धार्मिक शीलमय देशमें नवशक्तिसे विभूषित सपादक अपने लेखोंद्वारा हजारों और लाखों मनुष्योंके अंतःकरणोंतक अपने धार्मिक विचारोंसे परिपूर्ण ओजस्वी लेख प्रतिसप्ताह और प्रतिमास पहुंचाता है, तथापि जैसा चाहिये वैसा धार्मिक

वायुमंडल नहीं बनता और न ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठा ठीक हो रही है, इसका कारण क्या है? इसका दोष कहां है? संपादकीय लेखोंसे स्वपक्षके समर्थक ईर्ष्या द्वेषके भाव अलग किये जांयगे, तो शेष लेख पूर्ण धर्मभावसे भरपूर होते हैं। ऐसे लेख पढनेके समय ऐसा प्रतीत होता है कि, कल होने वाली धर्मोन्नति निःसंदेह आज ही होगी। परंतु व्यवहारमें देखा जाय तो ब्रह्मचर्य साधक धार्मिक वायुमंडल नहीं बनता है। इसलिये उक्त लेखोंका प्रतिदिन खंडन किसी न किसी प्रकार अवश्य होता होगा।

शब्दमें विलक्षण शक्ति है और आजकलके चतुर संपादक और जोशीले उपदेशक शब्दोंको बर्तनेकी कला अच्छी प्रकार जानते हैं। इतना होनेपर भी इतने व्याख्यानों और लेखों द्वारा वह इष्ट कार्य क्यों नहीं होता, इसका हर एक को अवश्य विचार करना चाहिये।

बहुत विचार करनेपर प्रतीत होता है कि हरएक स्थानमें "**अनुष्ठानका अभाव**" है। सत्यनिष्ठापर उत्तम लेख लिखने वाले असत्यके भाव मनमें धारण करते हैं, धर्मके स्वरूपका वर्णन करनेवाले मानसिक विचारोंमें अधार्मिक होते हैं, वेदकी प्रतिष्ठाके लिये कटिबद्ध होकर प्रयत्न करनेवाले भी वेद से अनभिज्ञ, संस्कृत का महात्म्य वर्णन करनेवाले संस्कृत भाषासे पूर्ण अपरिचित, ब्रह्मचर्य का महत्व वर्णन करनेवाले स्वयं ब्रह्मचर्य हीन, योगका वर्णन करनेवाले स्वयं मनके चंचल तथा शांतिका व्याख्यान देनेवाले स्वय अशांत होनेके कारण ऐसा हो रहा है। परंतु यहां कहा जा सकता है कि, जैसे मनुष्य हैं वैसे ही हैं, उन्हींसे जो हो रहा है, क्या

वह बंद करना चाहिये ? नहीं, जैसे मनुष्य हैं उनकी मानसिक अवस्थाके अनुकूल जैसा बनना संभव है वैसाही बन रहा है। यहां हमें कोई अधिकार नहीं कि, किसीके वैयक्तिक आचरणपर आक्षेप किया करें। वैसा करनेसे कोई लाभभी नहीं है। परंतु यहां हमें जो वक्तव्य है, वह सबसे होनेवाला है, और उस पर "**केवल लालच के कारण ही ध्यान नहीं दिया जाता।**"

(७) वृत्तपत्रोंका बहिरंग।

इस लेखके लिये हम माननेको तैयार हैं कि, सब पत्रोंके संपादक और प्रबंधक सत्य धर्मके प्रचारके इच्छुक हैं, बहुत अंशोंमें वैसा होगा भी, क्यों कि पार्टी बन जानेके कारण वे भी प्राप्त नीतिके अनुकूल आचरण करनेके लिये लाचार हैं। **परंतु पत्रोंका बहिरंग शुद्ध और पवित्र रखनेमें तो कोई कठिनता नहीं है ?**

यदि मान लिया जाय कि, पत्रोंका अंतरंग भाव जो संपादकीय लेखोंसे व्यक्त होता है, अत्यंत पवित्र है, तथापि उसीका खंडन यदि उनके बहिरंगके विज्ञापनों द्वारा हुआ तो उनके उच्च लेखोंका परिणाम कैसे होगा ? **अंतरंगमें ब्रह्मचर्य पर लेख होते हैं, गुरुकुल शिक्षाप्रणाली का समर्थन होता है, वेद और शास्त्रोंकी उच्चता बताई जाती है, उसी अंकके बहिरंगपर जो विज्ञापन होते हैं, वे ब्रह्मचर्य के घातक, कामविषय का उत्तेजन करनेवाले और अश्लील विषयवासना के सहायक होते हैं !!!** क्या इस बातसे ये संपादक और प्रबंध कर्ता अनभिज्ञ हैं ? जगत्का

सुधार करनेके लिये कटिबद्ध हुए हुए ये सज्जन ऐसे अश्लील विज्ञापनोंका पैसा लेनेके समय, ये विज्ञापन अपने पत्रके उद्देश्यके लिये साधक हैं, वा बाधक हैं, इसका भी विचार नहीं करते ! ! !

कई पत्रोंमें—धार्मिक पत्रोंमें भी—ये विज्ञापन इतने गंधे और अश्लील होते है कि, बालकों और साध्वी स्त्रियोंकी उपस्थितिमें पढने लायग्व भी नहीं होते । परंतु ये लोभी नेता इन विज्ञापनोंका पैसा लेकर अपने ही ग्राहकोंका स्वास्थ्य जलानेका घोर कार्य करते हैं ! वास्तविक देखा जाय, तो ग्राहकोंका हित करना ही पत्रके संपादकका कर्तव्य है, पत्रके संपादक और प्रबंधकर्ताको चाहिये कि, अपने पत्रमें ऐसी एकभी पंक्ति न रहे कि, जो ग्राहकोंका नुकसान करनेवाली हो । परंतु धार्मिक पत्रोंके प्रबंधकर्ता भी विज्ञापनोंका मूल्य लेनेमें जितने दक्ष होते है, उससे शतांश दक्षता ग्राहकों के हित के विषयमें नहीं दर्शाते ।

कामोत्तेजक गोलियां, स्तंभक बत्तियां, वीर्य रक्षक चूर्ण, धातुवर्धक रस, वृद्धको जवान बनानेवाले रसायन, बल बढाने वाले और आयुको दीर्घ बनानेवाले अवलेह आदि सहस्रों आजकल विज्ञापन अखबारोंके ऊपर ही दिखाई देते हैं । इसके अतिरिक्त सुगंधशरीर, केशवर्धक तैल, सब सुखोंको यथेच्छ देनवाले तावीज और मंत्र तंत्रके धागे और मणि आदिकोंके विज्ञापन कोई कम नहीं है । विज्ञापनोंके स्थानका विचार किया जाय तो पुस्तकोंके विज्ञापनों—विशेषतः धार्मिक पुस्तकोंके विज्ञापनों—के लिये जितना स्थान मिलता है, उससे कई गुना बडा

विज्ञापन इनका होता है, क्यों कि औषधिका मूल्य और लाभ का जो इनका प्रमाण होता है, उससे व्यस्त प्रमाणमें पुस्तक विक्रेताओंको कार्य करना पडता है। पत्रोंके संपादक और प्रबंधक इससे अनभिज्ञ हैं, ऐसी बात नहीं है; परंतु लालच के मारे वे भी बेचारे क्या करेंगे ? और इसीलिये जनताके ब्रह्मचर्य नाशका पातक, उक्त औषधियां बेचनेवालोंकी अपेक्षा, इनपरही अधिक है; क्यों कि धार्मिक संदेसा पाठकों तक पहुंचनेके पूर्वही, " कामोत्तेजक " पदार्थोंका ज्ञान ये लोग जनताको देते है। विज्ञापन ऊपर ही होते हैं और लेख पत्र खोलनेके बाद पढा जाता है, इसलिये पहिला बोध काम वासनाको बढानेका पाठकोंको मिलता है। बाद समय मिला तो अंदरके लेखका परिणाम होगा। सब इस बातको जानते ही है कि, **गिरना आसान है और उठना कठिन है। ब्रह्मचर्य तोडना क्षणमें होता है, परंतु ऊर्ध्वरेता बनना सालोंसाल अनुष्ठान करनेसे हो सकता है।**

प्रियपाठको ! अब देखिये कि ब्रह्मचर्यकी हानिके उत्तरदाता कौन है ? और क्या येही जनताके शील का संवर्धन, धार्मिकभावका रक्षण और ब्रह्मचर्यका पोषण करेंगे ! इस विषयमें आप खूब विचार कीजिये और उपाय सोचिये।

(८) शत्रुको सहायता न करो।

"कामविकार" ब्रह्मचर्यका शत्रु है, " **वैदिकधर्म** " निश्चयसे कहता है कि, उसको बढाना अपने शत्रुको बढानेके समान ही हानि-

कारक है। चार आश्रमोंमें केवल गृहस्थका ही कामविकारसे संबंध है; और वह भी ऋतुकालमें नियत किया गया है। इस विषयमें वेद कहता है

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत
कोकयातुं ॥ सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव
प्रमृण रक्ष इंद्र ॥ ऋ. ७।१०४।२२

"(१) (कोकयातुं) चिडियोंके समान व्यवहार अर्थात् कामविकार, (२)(शुशुलूक यातुं) भेडियेके समान आचार अर्थात् क्रोध, (३) (गृध्रयातुं) गीधके समान लालची स्वभाव, (४) (उलूक यातुं) उल्लूके समान अज्ञान अर्थात् मोह, (५) (सुपर्णयातुं) गरुडकेसमान घमंड, (६) (श्वयातुं) कुत्तोंके समान आपस का मत्सर अर्थात् स्वकीयोंके साथ झगडा करना और परकीयोंके सामने दूम हिलाना, ये छः शत्रू हैं, इनको वैसा मारो कि जैसा पत्थरसे पक्षीको मारते हैं। हे प्रभो इंद्र। इन छः शत्रुओंसे हमारा बचाव करो।" इस वेदकी आज्ञाके अनुकूलही श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण-भगवान् कहते हैं—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥
महाशनो महापाप्मा विध्येनमिह वैरिणं ॥ ३७ ॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ॥
कामरूपेण कौंतेय दुष्पूरेणाऽनलेन च ॥ ३९ ॥
तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ॥
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४२॥

भ.गीता. ३

" इस विषयमें यह समझो कि रजोगुणसे उत्पन्न होनेवाला बडा पेटू और बडा पापी यह काम एवं यह क्रोध ही शत्रु है ॥ हे कौंतेय । ज्ञाताका यह कामरूपी नित्य वैरी कभीभी तृप्त न होनेवाला अग्नि ही है, इसने ज्ञानको ढक रखा है, अतएव हे भरत श्रेष्ठ ! पहिले इंद्रियों का संयम करके ज्ञान और विज्ञान का नाश करनेवाले इस पापीको तू मार डाल ॥ हे महाबाहु अर्जुन ! इस प्रकार जो बुद्धिसे परे है उसको पहचान कर और अपने आपको रोक करके दुरासाद्य कामरूपी शत्रुको तू मार डाल ॥ "

कामके विषयमें "**वैदिक धर्म**" की यह संमति है, परंतु वैदिक धर्मीय संपादकोंके अखबारोंमें इसी शत्रुरूप कामको उत्तेजित करनेवाले भयानक विषरूप दवाइयोंके विज्ञापन इतने भरे हैं कि, उनसे ब्रह्मचर्य साधन के लेखभी दबे जारहे हैं। इसविषयमें मनुका कहना है कि,

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

मनु. २।९४

"कामके उपभोगसे कामकी शांति नहीं होती, वह अग्निके समान उपभोगोंसे बढता ही जाता है।" इसलिये उचित तो यह है कि,

इसको संयमके द्वारा आधीन किया जावे। परंतु आजकलकी अखबारी दुनियाका प्रवाह इसके सर्वथा विपरीतही है।

गुरुकुलोंकी स्थापना ब्रह्मचर्यके लिये है, वैदिक धर्मके सत्संगोंकी योजना ब्रह्मचर्यके लिये है, इन बातोंकी जागृति भी अखंड ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले योगिराजकी ही की हुई है, तथापि उनके कार्यको चलानेवाले अखबारोंमें भी कामोत्तेजक दवाइयां मौजूद हैं !!! और इसका विचार कोईभी नहीं करता। देखिये कितनी विपरीत अवस्था होगई है।

कामविकार न बढनेकी अवस्थामें भी कितना व्यभिचार चल रहा हैं। ऐसी अवस्थामें चारगुणा अथवा दसगुणा काम बढ गया, तो क्या अवस्था होगी, इसका विचार विद्वान सुविचारी पाठक ही कर सकते हैं।

(९) इन विज्ञापनोंका दुष्परिणाम।

कई विज्ञापनोंकी भाषा गंधी होती है, परंतु कईयोंकी भाषा बडी सभ्य होती है; परंतु शब्द ऐसे रखे होते हैं कि सबको "**अंदरका तात्पर्य**" समझमें आ जाय। इन विज्ञापनों को अज्ञान तरुण पढते हैं, और दवाइयां मंगवार ऐसे फंसते हैं कि, उनका वर्णन करना भी कठिण कार्य है। इस इश्तिहार बाजोंके कारण सैकडों तरुण ऐसी अवस्थामें जा पहुंचे हैं कि, जहांसे वापस नहीं आसकते; और इस पापके धनी विज्ञापनदाताही नहीं हैं, परंतु अखबारोंके लोभी संचालक भी हैं, जो अपने कर्तव्योंको भूलते हुए, ग्राहकोंके खूनोंसे भरे हुए धनसे अपने भोग बढाते रहते हैं और भावी संततिके ब्रह्मचर्य भ्रष्टताके पापके पहाडोंमें आनंदसे विचरते हैं।

जहां उपदेशक वर्गकी यह अवस्था है, वहां "**ब्रह्मचर्यका वायुमंडल**" कैसा बन सकता है, और **वैदिक-धर्म** की ज्योति भी कैसी उज्वल हो सकती है, इसका विचार प्रियपाठक ही कर सकते है।

(१०) प्रबंधकर्ताका अनुमोदन ।

इस प्रकारके विज्ञापनोंसे संपादक और प्रबंधकर्ताको विपुल धन मिलता है, इसलिये ये इन विज्ञापनोंके अनुमोदकही है। पतंजलि महामुनिने कई प्रकारकी हिंसा कही है, परंतु यह पत्रकार कर्तव्य-विमुखताके कारण जो तरुणोंकी हिंसा कर रहे हैं, वह बडी भयानक है। एक गंधा विज्ञापन लाखोंके पास जाता है, और वहां उनके विचारों और आचारोंका ऐसा बिगाड करता है कि, जिसका वर्णन होना अशक्य है।

वास्तविक रीतिसे देखा जायगा, तो अखबार ग्राहकोंका है, और उसमें विज्ञापन आने न आनेके विषयमें ग्राहकोंकी संमति लेनी चाहिये। अथवा ग्राहक भी अखबार वालोंको सूचना दे सकते हैं कि, फलाना विज्ञापन घातक है, इसलिये छापना बंद करो, अथवा यदि छापना है, तो हम अपका अखबार बंद करते हैं। सचालकोंके पास पैसा आरहा है, इसलिये उनका सुधार स्वयं नहीं होगा, अतः ग्राहकोंको ही अपना बचावका उपाय सोचना चाहिये। यह उपाय ग्राहकही कर सकते हैं। ग्राहकोंके घरमें स्त्रियां, कुमार, कुमारी तथा, नवयुवक होते ही है, इसलिये हरएक ग्राहकको इस बातका विचार करनेका अधिकार है

कि, फलाना विचार अपने घरमें आने योग्य है वा नहीं । जिसप्रकार अपने पेटमें पदार्थ डालनेके समय पदार्थ योग्य है वा नहीं, इसका विचार किया जाता है, उसी प्रकार अपने परिवारमें नया विचार आनेके समय वह योग्य है वा नहीं, इसका विचार अवश्य करना चाहिये । इस दृष्टिसे पाठक अखबारोंका विचार करें और अपना बचाव करनेका यत्न करें ।

(११) उत्तेजक औषधोंका परिणाम ।

उत्तेजक औषधोंसे शक्ति नहीं बढती, परंतु **शरीरकी संरक्षक शक्ति प्रतिसमय न्यून होती** है । प्रत्येक मनुष्यमें एक संरक्षक शक्ति और दूसरी कार्यशक्ति होती है । कार्य-शक्तिका ऱ्हास होनेसे अशक्तता आती है और संरक्षक शक्तिके न्यून होनेसे मृत्यु आता है । कार्य शक्ति प्रत्येक इंद्रियमें जाकर कार्य करती है, यह शक्ति नष्ट होनेसे मनुष्य कार्य करनेमें असमर्थ होता है । जिस समय उत्तेजक औषध पेटमें जाता है, उस समय सब शरीरके सूक्ष्म केंद्र उत्तेजित होते हैं, और संरक्षक शक्तिको बाहिर निकालते हैं । क्षणमात्र उस उत्तेजक औषधका परिणाम रहने तकही उत्साह प्रतीत होता है, परंतु थोडी ही देरके पश्चात फिर पूर्वकी अपेक्षा अधिक थकावट मालूम होती है । इस प्रकार जितना उत्तेजक औषधोंका प्रयोग अधिक बढ जायगा, उतनी संरक्षक शक्ति नष्ट हो जायगी, और अकालमृत्यु शीघ्र आजायगा ।

चा, काफी, मद्य, भंग, गांजा आदि व्यसन तथा उत्तेजक औषध, इन सबका परिणाम इसीप्रकार न्यूनाधिक रीतिसे घातक ही होता है।

व्यापारमें मूल पूंजी जैसी होती है वैसी शरीरमें संरक्षक शक्ति है। तथा जैसा व्यापार व्यवहारमें लानेका धन होता है, वैसी कार्य शक्ति होती है। जो व्योपारी अपनी मूल पूंजी ही खाने लगता है उसका दिवाला निकलनेमें देरी नहीं लगती। इस प्रकार उत्तेजक औषधोंके कारण जो मनुष्य अपनी संरक्षक शक्तिका नाश करता है, उसका शीघ्र मृत्यु होनेमें शंकाही नहीं है।

कई विज्ञापनोंमें कहा होता है कि एक पुडिया अथवा वटी एक रात्रीमें ही गुण बताती है। पाठक विचार कर सकते हैं कि, यह उत्तेजक द्रव्य कहांसे शक्ति लाता होगा। और किस प्रकार शरीरके संरक्षक शक्तिका घात करता होगा। जो लोग इस प्रकार घात करेंगे, उनको कभी आरोग्य प्राप्त होनेकी आशा नहीं रहेगी।

इन विज्ञापनोंके कारण कई पुरुषोंकी अवस्था हमने ऐसी देखी है कि वे सवेरे शौचशुद्धिके लिये गोली लेते हैं, पश्चात भूक लगनेके लिये वटी खाते हैं, पश्चात् थोडासा अन्न खातेही हाजमेके लिये चूरण सेवन करते हैं, पश्चात् शक्तिवर्धक पाक लेते हैं, तदनंतर उत्साहवर्धक पेय पीते हैं, नंतर रात्रीमें कामोत्तेजक गोली खाते हैं और अंतमें निद्रा आनेके लिये दवा पीते हैं। इस प्रकार जिनका जीवन औषधोंसे ही चलता है, उनकी अवस्थाकी शोचनीय दशा

क्या वर्णन हो सकती है? इसका बहुतांशमें मूळ कारण दवाइयोंके अत्याचारी विज्ञापन ही हैं। अज्ञान अवस्थामें औषध सेवनका क्रमशः प्रारंभ होकर अंतमें भयानक अवस्थातक पहुंचते हैं !!!

(१२) शक्ती किससे प्राप्त होती है।

औषधोंसे यदि शक्ति आती तो कोई भी अशक्त न होता। वास्तविक बात यह है, कि अंदरकी संरक्षक शक्ति की सहायतासे जबतक कार्य चलता रहेगा तबतक शक्तिका विकास होता रहता है। **सात्विक भोजन, योग्य आहार विहार, नियमित व्यायाम, इंद्रियोंका संयम, यमनियमोंके अनुसार व्यवहार, आसनोंसे नसनाडीकी स्वच्छता, प्राणायामसे फेफडोंका बलवर्धन, ध्यान धारणापूर्वक ईश्वर भक्तिसे मन बुद्धि और चित्तकी प्रसन्नता करनेसे ही सच्चा बळ बढ जाता है,** और इसप्रकार बढाहुआ बल चिरकाल रह कर आनंद को देता रहता हैं। यह योगसाधन की रीति है जो बिलकुळ स्वाभाविक निरुपद्रवी और निःसंदेह लाभ देने वाली है।

(१३) आत्मविश्वास की आवश्यकता।

शक्तिका विकास होनेके लिये आत्मविश्वास की बडी आवश्यकता है। आत्मविश्वासके विना कोई कार्य होना सामान्यतः अशक्य ही है। और विशेषतः अपनी शक्ति बढना तो सर्वथा अशक्य है। **औषधोंका प्रयोग जितना अधिक बढेगा, उतनाही आत्मवि-**

श्वास न्यून होता जाता है। जिस प्रकार पहारेदारपर ही केवल विश्वास रखनेवाला मालक प्रतिदिन शक्तिहीन होता है वैसा अपना संरक्षण स्वयं करनेवाला मनुष्य अशक्त नहीं होता; अथवा सम्राट् के सैन्यसे अपना बचाव करनेवाला रियासतका छोटा मांडलिक राजा जिस प्रकार प्रतिदिन परावलंबी होता है, वैसा अपने सैन्यसे अपने राज्यका रक्षण करनेवाला महाराजा कमजोर नहीं बनता; ठीक इसी-प्रकार औषधोंकी योजनासे अपने शरीरके व्यवहार करनेवालेकी अवस्था होती जाती है। इसीलिये योगसाधनमें अपनी आंतरिक शक्तिका विकास अपने प्रयत्नसेही करनेका विचार प्रधान होता है।

आजकल ऐसी दुष्ट प्रवृत्ति बढरही है कि, थोडासा सिर दर्द हुआ तो डॉक्टरकी दवा ली, थोडीसी बदहजमी हुई तो पाचक चूरण लिया; इस प्रकार " **हरसमय स्वकीय आत्मिक शक्तिका अनादर, और परकीय शक्तिका आदर** " बढ जानेके कारण प्रतिदिन परवशता बढ रही है। प्रतिसमय औषध पीनेके कारण शरीर औषधोंका अभ्यासी होता है, और फिर औषधोंका वह परि-णाम भी नहीं होता, जो कि शास्त्रोंमें लिखा है। फिर कहने लगते हैं कि देखो, ' औषधका कुछ भी परिणाम नहीं हुआ ' परंतु इसमें दोष अपना है, औषधका नहीं। विशेषतः तरुणोंको चाहिये कि वे औषधोंके शिकार न बनें और आत्मिक शक्तिपर अधिक विश्वास रखें। साधारण बीमारियाँ, कम खाने, समयपर भूखा रहने, अथवा योग्य वायुसेवन और व्यायाम करनेसेही दूर होती हैं, इसलिये

थोडासा कुछ होतेही औषध लेनेका अभ्यास दूर करना अत्यंत आवश्यक है। नगरके रहनेवालोंको औषध सेवनका व्यसन बहुत होता है वैसा ग्रामोंके रहनेवालोंको नहीं होता, इसीलिये एकही दवाईका कोई परिणाम नगर निवासी महाशयपर नहीं होता, परंतु उसीका उत्तम परिणाम ग्रामीण किसानके शरीरपर होता है, इसका परिणाम यह होता है कि एक दो वार औषध पीनेसे ग्रामीण किसान अच्छे होते हैं और नागरिक महिनोंके महिने बोतलें पी पी कर थक जाते हैं, तो भी शिकायतें रहती हीं हैं। इस क कारण औषधोंका सेवन हद्दसे अधिक हुआ है यही है।

(१४) योगी वैद्य और वैद्य योगी

पतंजलि महामुनितक वैद्य योगीही हुआ करते थे। यागी होनेका तात्पर्य यह है कि जो आंगिरस चिकित्सा, आथर्वणी चिकित्सा, दैवी चिकित्सा अथवा मानस चिकित्सा करनेके साथ साथ औषधिका प्रयोग करता है। आजकल के वैद्य और डाक्टर "**मन**" का विचार न करते हुए ही औषधोंका प्रयोग करते हैं, क्यों कि उनका लक्ष्य बिल के पैसे वसूल करनेकी ओर अधिक होता है। वास्तविक देखा जाय, तो पहिले "**मन बीमार होता है, और पश्चात् शरीर रोगी होता है।**" इसलिये मनकी चिकित्साके साथ शरीरमें औषधि प्रयोग होने चाहिये। जिस दिन वैद्य योगी होंगे, अथवा योगी ही वैद्य होंगे, उसी दिन सच्चा आरोग्य जनताको प्राप्त होना संभव होगा। यह अवस्था पहिले थी, परंतु पश्चात् बिगड गई।

प्राचीन कालके आर्योंमें वैद्योंका मान बिलकुल नहींथा, सब स्मृति-ग्रंथ एकमतसे कहते हैं कि धार्मिक कार्य में अर्थात् यज्ञादि में वैद्यको बहिष्कृत–अपंक्त–समझना चाहिये। जिस समाजमें नीरोग लोग बहोत होंगे, उस समाजमें वैद्योंका मान कम होना स्वाभाविक ही है। यज्ञमें अश्विनी कुमारोंको हविर्भागभी नहीं दिया जाताथा, इसी लिये कि वे वैद्य थे। परंतु च्यवन ऋषिनें बुढापेमें कुमारिकाके साथ शादी की और उसको कामोत्तजक गोलीकी जरूरत हुई, इस लिये उन्होंने अश्विनी कुमारोंकी शरण ली, और फीज की तौर पर च्यवन ऋषिनें अश्विनी कुमार वैद्योंको यज्ञमें हविर्भाग देनेकी प्रथा प्रारंभ की। यह कथा शतपथब्राह्मण (कां. ४ । १ । ५ । १) में है। अन्य पुराणों भी है। इस सबका तात्पर्य यह है कि, जिससमय मानवजातिमें रोग कम थे, उस समय वैद्योंका मान नही होता था। परंतु इस समय वैद्यों और वकीलोंका ही मान बढा है, क्योंकि रोग और आपसके झगडे बहुत बढ गये हैं।

(१५) धर्म क्या चाहता है ?

धर्म यही करना चाहता है कि, स्वकर्तव्यका ज्ञान बढे और मनुष्य अपनी मर्यादाके अनुकूल चलें। ऐसा होनेसे आपसके झगडे कम होंगे, और योगसाधनानुकूल यमनियम पूर्वक जीवन चलनेसे आरोग्य भी बढेगा। "**वैदिक धर्म**" वैद्यों और वकीलोंकी जरूरत कम करना चाहता है। इसी लिये आजकलके विज्ञापनोंका स्वरूप इस लेखमें बताया जा रहा है। "**वैदिक धर्म**" ब्रह्मचर्य पालन

होनेकी आवश्यकता बतारहा है और आजकलके वैद्योंके विज्ञापन काम को उत्तेजित करके नवयुवकों का संहार कर रहे हैं। इसलिये इनके कारण वैदिक धर्मकी गति पीछे हट रही है।

इन विज्ञापनी वैद्योंने गुरुकुलों और ऋषिमुनियों के नाम भी छोडे नहीं हैं। ऋषि मुनि यज्ञ करके "**सोमरस**" पीते थे, परंतु आज आप दोचार रु. खर्च करके डाकके द्वारा अपनी तंग गलिमें भी सोमरसकी बोतल मंगवा सकते हैं!! यज्ञ करनेकी जरूरत नहीं है, और कोई कष्ट नहीं है। गुरुकुलोंमें जाकर यम नियम न पालन करते हुए ही घर बैठे "**ब्रह्मचर्यकी वटी**" आप वी. पी. द्वारा मंगवाइये और सेवन कीजिये। परंतु कोई पूछने वाला भी है कि, इन दिनोंमें वह "**सोम**" मिलताभी है कि जो ऋषि मुनि पिया करते थे? शतपथब्राह्मणके समयसे वह सोम दुर्लभ हुआ था। वह अब इस समय कहांसे आया? वैदिक धर्मका ढोल बजाने वाले और अखंड ब्रह्मचारी ऋषिके ऋषित्वके संरक्षक सोम की सचाईकी अथवा झूटाईकी पर्वाह न करते हुए, और यज्ञकी आवश्यकता न समझते हुए ही, घरमें सोमपान करानेमें मस्त हैं!!! ऋषि यज्ञ करनेके पश्चात् सोम क्यों पीते थे और इस समय वह सोमरस दुकानोंमें क्यों बेचा जाता है? क्या यही वैदिक धर्मका प्रकाश है? और येही वैदिक धर्मके संरक्षक हैं?।

इस प्रकार विज्ञापनों में ऋषि और मुनि पीसे जारहे हैं। इसका कारण इतना ही है कि विज्ञापनी वैद्य पैसा चाहते हैं और वही

पैसा अखबारवालोंको चाहिये। बस, ग्राहक मरें अथवा जो कुछ हो इसकी तो किसीको परवाह ही नहीं है।

इसीलिये "**वैदिक धर्म**" इनका विरोधी है।

(१६) ब्रह्मचर्य रक्षणकी कठीनता।

उक्त कारणोंसे नवयुवकोंका आत्मविश्वास हटगया है। और उत्तेजक दवाइयोंके सेवनसे आंतरिक संरक्षक जीवन शक्ति कम हुई है तथा कामवासना बढने लगी है। इस कारण ब्रह्मचर्यका अभाव प्रतिदिन हो रहा है। गोलियां खा कर जो कामोपभोग करेंगे उनकी संततिभी अधिक कामातुर होगी, और इसलिये उनमें ब्रह्मचर्य सुरक्षित नहीं रह सकेगा। यही कारण है कि चार दिवारीके अंदर बंद युवकों में भी बुराइयां दिखाई देती हैं।

संपादकोंके आधीन बडी शक्ति है, परंतु उस शक्तिका दुरुपयोग हो रहा है, इसलिये नवयुवकों को तथा जनतामेंसे प्रत्येक को अपना संरक्षण करना चाहिये।

(१७) ब्रह्मचर्यका रक्षण कैसा होगा।

योग साधनसे और अपनी निष्ठाके प्रयत्नसे ही ब्रह्मचर्यका साधन और रक्षण होगा। अन्य उपाय नाशक ही हैं।

इसलिये तरुणोंको उचित हैं कि वे नियम पूर्वक योगसाधन करें योग्य प्राणायाम, शीतजलप्रयोग, ऊर्ध्व आकर्षणविधि, ब्रह्मचर्य साधक आसनोंका अभ्यास, योग्य सात्विक आहार, उत्तम पुस्तकोंका पठन,

सज्जनोंकी संगति, परमेश्वर भक्ति, आत्मविश्वास, महत्वाकांक्षा आदिके कारण इस प्रकार वीर्यरक्षण होता है कि इच्छाके समय ही बिंदुका स्राव होगा अन्यथा नहीं। इसका नाम है ब्रह्मचर्यका रक्षण और यही "**वैदिक धर्म**" में प्रशंसित है।

(१८) सावधानीकी सूचना।

आज कलकी अवस्था कैसी है, अखबारोंका हमला छिपकर ब्रह्मचर्यपर कैसा हो रहा है, नव जवान कैसे उन विज्ञापनोंमें फंसते जाते और पस्ताते हैं, इत्यादि बातों का वर्णन संक्षेपसे किया। जितने अखबार वाले इस लेखक को पता हैं, उनके साथ विज्ञापनविषयक पत्रव्यवहार करके इस लेखका लेखक थक गया, अनुभव यह आया कि धनकी लालच के कारण कोई सुनता नहीं है। इसलिये जो पाठकोंसे निवेदन करना आवश्यक था वह इस लेखमें किया है। आशा है कि पाठक अपने हितके लिये जागेंगे और योग्य आचरण करके अपना संरक्षण करनेके लिये तत्पर होंगे।

" वैदिक धर्म "

(१) " वैदिक धर्म " मासिक पुस्तक प्रतिमास वैदिक धर्मके तेजस्वी विचार प्रसिद्ध करता है।

(२) " वैदिक धर्म " मनुष्य मात्रके अभ्युदय और निःश्रेयसका सच्चा धर्म बताता है।

(३) " वैदिक धर्म " स्फूर्ति, उत्साह और आनंद बढाता है।

(४) " वैदिक धर्म " शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक उन्नतिके सच्चे मार्ग बताता है।

(५) " वैदिक धर्म " वैयक्तिक, सामुदायिक, जातीय, राष्ट्रीय तथा मानवी उत्कर्षके शुद्ध उपदेश प्रकाशित करता है।

(६) किसी प्रकारके कठिन समयमें आप " वैदिक धर्म " के विचार पढेंगे तो आपकी उदासीनता दूर होगी, और सच्चा नवजीवन प्राप्त होगा।

इसका वार्षिक मूल्य ३।।) साडे तीन रु. है। विदेशकेलिये ४।।) रु. है। आप शीघ्र ग्राहक बन जाइए और अपने मित्रोंको ग्राहक बननेकी प्रेरणा कीजिये ।।

स्वाध्याय मंडलके पुस्तक ।

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या । **नरमेध** । "**मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन** ।" मूल्य १) एक रु. ।

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या । **सर्वमेध** । "**एक ईश्वरकी उपासना** ।" मू. ॥) आठ आने । (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) य.अ. ३६ की व्याख्या । **शांतिकरण** । "**सच्ची शांतिका सच्चा उपाय** ।" मू.॥) आठ आने । (द्वितीयवार मुद्रित)

[२] देवता-परिचय-ग्रंथ-माला ।

(१) रुद्र देवताका परिचय । मू. ॥) आठ आने ।

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता । मू. ॥=) दस आने ।

(३) ३३ देवताओंका विचार । मू. =) दो आने ।

(४) देवता विचार । मू. ≡) तीन आने ।

[३] योग-साधन-माला ।

(१) संध्योपासना । योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है । मू. १॥) (द्वितीयवार मुद्रित)

(२) संध्याका अनुष्ठान । मू. ॥) आठ आने ।

(३) वैदिक-प्राण-विद्या । (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) ब्रह्मचर्य । मू. १।) सवा रुपया ।

[४] ब्राह्मण-बोध-माला ।

(१) शत-पथ बोधामृत । मू० ।) चार आने ।

[५] धर्म–शिक्षाके ग्रंथ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा। प्रथमभाग। मू. -) एक आना।
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा। द्वितीयभाग। मू. =) दो आने।
(३) वैदिक पाठ माला। प्रथम पुस्तक। मू. ≡) तीन आने।

[६] स्वयं शिक्षक माला।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक। प्रथमभाग। मू. १॥) डेढ रु.।
(२) वेदका स्वयं शिक्षक। द्वितीय भाग। मू. १॥) डेढ रु.।

[७] आगम-निबंध-माला।

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ।-) पांच आने।
(२) मानवी आयुष्य। मू. ।) चार आने।
(३) वैदिक सभ्यता। मू. ≡) तीन आने।
(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र। मू. ।) चार आने।
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ॥) आठ आने।
(६) वैदिक सर्प–विद्या। मू. ॥) आठ आने।
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ॥) आठ आने।
(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥) आठ आने।
(९) शिव संकल्पका विजय। मू. ॥।) बारह आने।
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता। मू. ॥) आठ आने।
(११) तर्कसे वेदका अर्थ। मू. ॥) आठ आने।
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र। मू. ≡) तीन आने।
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न। मू. =) आने।

मंत्री—स्वाध्याय–मंडल; औंध (जि. सातारा)

उपनिषद्-ग्रंथ-माला।

" जीवनके समय आनंद और मृत्युके समय शांति "

" अभ्युदयका उपाय और निश्रेय का मार्ग "

बतानेवाले ये उपनिषद् ग्रथ होनेके कारण, इनके अध्ययनसे हरएकको लाभ हो सकता है। इस समयतक निम्न उपनिषदोंके व्याख्या—ग्रंथ छप चुके हैं—

(१) ईश उपनिषद्।

हरएक मंत्रकी सरल व्याख्या और विस्तृत विवरण इस पुस्तकमें होनेसे इसके पढनेसे हरएक मंत्रका गूढार्थ और तत्वज्ञान सुगमतासे विदित हो सकता है।

मूल्य ०॥=) चौहद आने।

(२) केन उपनिषद्।

इसमें विस्तृत भूमिका, केन उपनिषद्का अर्थ और विचार, अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और मनन, तथा देवीभागवतके देवतागर्वहरणकी कथाकी संगति बताई है। इसके पढनेसे मंत्र और उपनिषद्की संगतिका ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

मूल्य १।) सवा रु.

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा.)

प्रकाशक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, स्वाध्याय मंडल; औंध (जि. सातारा.)

मुद्रक—रा. चिं. स. देवळे, मुंबईवैभव प्रेस, सँडर्स्ट रोड, गिरगांव-मुंबई.